315hi17

17

ब्रिटिश उपनिवेशवाद का आर्थिक प्रभाव

अपने भारतीय उपनिवेश के साथ ब्रिटेन का संबंध राजनीतिक सहयोगी के समान था किन्तु इस रिश्ते का केन्द्र बिन्दु आर्थिक शोषण बन गया था। उपनिवेशवाद की प्रक्रिया का मुख्य उद्देश्य था अपने राष्ट्र को लाभ पँहुचाना, भले ही वह उपनिवेश की कीमत पर हो। इस अध्याय में हम उपनिवेशवाद की प्रक्रिया के अन्तर्गत होने वाले आर्थिक शोषण के विविध पहलुओं के बारे में चर्चा करेंगे।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात् आपः

- भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद की प्रक्रिया के तीन चरणों को जान सकेंगे;
- भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में उपनिवेशीय राजस्व समझौते के द्वारा आए परिवर्तनों को समझ सकेंगे;
- उपनिवेशों में किए जा रहे उपनिवेशी–पूंजीवादी–परिवर्तनों के मिश्रित प्रभावों का विश्लेषण कर सकेंगे;
- पूर्ववर्ती राष्ट्रवादियों द्वारा बतलाए गए 'संपत्ति के प्रवाह' सिद्धान्त की व्याख्या कर सकेंगेः
- उपनिवेश में उपनिवेशवादी आधुनिकता की भिन्न प्रकृति को समझ सकेंगे तथा यह भी समझ सकेंगे कि प्रगति आवश्यक रुप से इसका परिणाम नहीं थी।

ब्रिटिश उपनिवेशवाद के चरण

औपनिवेशिक शोषण मुख्यतः तीन चरणों में विकसित हुआ। 'वाणिज्यवाद' का **प्रथम चरण** (1757-1813) एक तरह की प्रत्यक्ष लूटपाट थी, जिसमें कि अतिरिक्त भारतीय राजस्व का प्रयोग इंग्लैण्ड निर्यात किये जाने के लिए, भारतीय तैयार उत्पादों को खरीदने के लिए किया जाता था। **द्वितीय चरण** (1813-1858) 'मुक्त व्यापार' था जिसमें भारत कच्चे माल के स्रोत के रूप में परिवर्तित हो गया तथा ब्रिटेन के उत्पादों का एक बाज़ार बन गया। **तीसरा चरण** (1858 से आगे) 'आर्थिक साम्राज्यवाद' का था जिसमें ब्रिटिश पूँजी ने भारत के बैंकों, विदेशी व्यापारिक संस्थाओं तथा प्रबंध संस्थानों को नियंत्रित

आपकी टिप्पणियाँ

किया। इस चरण में मुख्यतया उपनिवेशवादी अर्थव्यवस्था के औद्योगिक तथा कृषि क्षेत्रों की अनेक आर्थिक नीतियों द्वारा शोषण किया गया।

ब्रिटिश उपनिवेशवाद का प्रथम चरण

प्रथम चरण सामान्यतया 1757 से प्रारंभ हुआ जब ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने उपमहाद्वीप के पूर्वी तथा दक्षिणी हिस्सों में राजस्व एकत्र करने के अधिकार प्राप्त कर लिए। यह सिलसिला 1813 तक चला, जब भारतीय व्यापार पर कम्पनी का एकाधिकार समाप्त हो गया।

ब्रिटिश भारत में इंग्लैण्ड की महारानी एलिज़ाबेथ प्रथम द्वारा समर्थित विशिष्ट शाही अधिकार पत्र के साथ एक विशुद्ध व्यापारिक कम्पनी की हैसियत से सत्रहवीं शताब्दी में भारत में व्यापार करने आए थे। उन्होंने अपना पहला कारखाना बंगाल में हुगली नदी के तट पर स्थापित किया। कम्पनी मुग़ल बादशाह से यह अनुमति या दस्तक पाने में सफल रही कि उसे अपने व्यापार पर करों में छूट प्राप्त होगी। इससे कम्पनी के कर्मचारियों में बड़े स्तर पर भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिला क्योंकि उन्होंने व्यापक स्तर पर इस फ़रमान का गलत उपयोग अपने व्यक्तिगत व्यापार के लिए किया। इसका अर्थ यह भी था कि इससे बंगाल के सूबेदारों (जो बाद में नवाब कहलाए) को सीमा शुल्क के रूप में राजस्व में भारी नुकसान उठाना पड़ा। यह एक ज्वलन्त, विवादास्पद मुद्दा था जो 1751 में हुए पलासी के युद्ध के प्रमुख कारणों में से एक बन गया।

इस काल में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी का मुख्य कार्य भारत से मसाले, कपास तथा रेशम खरीदकर उन्हें ब्रिटेन के ऐसे बड़े बाजार में भारी फायदे में बेचना होता था जिनकी वहाँ भारी माँग थी। इसका अर्थ यह हुआ कि ब्रिटेन से भारी मात्रा में सोना–चांदी इन वस्तुओं के भुगतान के लिए भारत आ जाता था। भरसक प्रयत्नों के बाद भी ब्रिटेन की वस्तुओं की खपत भारत में नहीं हो पाती थी जिससे इस बहिर्प्रवाह की पूर्ति हो सके। वस्तुओं की खरीद फरोख्त के अतिरिक्त कंपनी को एक बड़ी राशि यूरोप की अन्य शक्तियों के साथ होने वाले युद्धों पर भी खर्च करनी पड़ती थी जो अधिकतर व्यापार के लिए एक जैसी ही वस्तुओं की खोज के लिए होते थे। इनमें शामिल थे पुर्तगाली, डच तथा फ्रांसीसी। बक्सर की लड़ाई और उसके बाद पलासी की लड़ाई हुई तत्पश्चात् बंगाल में दीवानी (अर्थात राजस्व एकत्रित करने का अधिकार) प्राप्त होने से कम्पनी के लिए भारत में होने वाले खर्चे के लिए पर्याप्त धन प्राप्त होने लगा।

भू - राजस्व नीतियाँ

1765 में ईस्ट इंडिया कम्पनी को बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा से दीवानी की प्राप्ति के पश्चात् ब्रिटिश प्रशासन का मुख्य कार्य उपनिवेश से राजस्व की अधिक से अधिक वसूली करना रह गया। कृषि लगान कम्पनी की आय का मुख्य स्रोत हो गया था, जिससे वह ब्रिटेन में अपने निवेशकों को लाभांश का भुगतान करती थी। अतः इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए ब्रिटिश प्रशासन ने भू– राजस्व की प्राप्ति के कई तरीके अपनाए। इन से कुछ हद तक उन रिश्तों पर भी प्रभाव पड़ा जो उपनिवेश तथा शासक के बीच थे।

सन् 1772 में बंगाल के गर्वनर वारेन हेस्टिंग्स ने बंगाल क्षेत्र में राजस्व खेती की व्यवस्था प्रारम्भ की। इस व्यवस्था के तहत् यूरोपीय जिला कलक्टर अधिक बोली लगाने वाले को राजस्व एकत्र करने का अधिकार दे देते थे। यह प्रणाली पूर्णतया असफल रही तथा इसने निरंकुश राजस्व मांगों की वजह से किसानों को बर्बाद कर दिया।

इस भयंकर गलती को सुधारने के लिए सन् 1793 में लॉर्ड कार्नवालिस ने स्थाई बंदोबस्त की शुरुआत की। इस व्यवस्था के तहत् जमींदार, जिन्हें पहले राजस्व एकत्र करने का ही अधिकार था, अब वे भूमि के स्वामी भी हो गए। कम्पनी की राजस्व माँग पूर्णतया निर्धारित थी किन्तु यदि जमींदार पूरे करों को चुकाने में असफल रहता था तो उसकी भूमि से उसे बेदखल कर दिया जाता था और राज्य द्वारा भूमि नीलाम कर दी जाती थी। इस व्यवस्था के जरिए राज्य ने जमींदारों का एक व्यापारी वर्ग तैयार कराया जो लाभ कमाने के लिए अपनी भूमि पर अधिक से अधिक अन्न उगा सकें। इसके अतिरिक्त कम्पनी के लिए भी प्रत्येक किसान की जगह कुछ जमींदारों से बातचीत करने में सुविधा हुई तथा समाज का एक शक्तिशाली वर्ग ब्रिटिश प्रशासन का वफ़ादार बन गया।

किन्तु इस व्यवस्था की वजह से बढ़ते राजस्व के बोझ ने किसानों को गरीबी के दलदल में घसीट दिया। कई जमींदारों को भी यह शर्त मानने में समस्या हुई जो समय पर धन का भुगतान न कर सके तथा भूमि से हाथ धो बैठे। इस व्यवस्था ने उप सामन्तवाद को भी बढ़ावा दिया अर्थात जमींदार तथा किसानों के मध्य कई दलाल पैदा हो गए थे जिन्होंने किसानों की मुश्किलें बढ़ा दीं।

दलालों को राजस्व संग्रह से बाहर रखने के लिए, ताकि राज्य भूमि से होने वाली आय का बड़ा हिस्सा ले सकें, सन् 1792 में अलैक्ज़ेन्डर रीड ने मद्रास क्षेत्र के लिए रैयतवाड़ी व्यवस्था आरम्भ की। बाद में इसे बम्बई में भी लागू किया गया। इस व्यवस्था के तहत् आरम्भ में हर गाँव से पृथक् रूप से राजस्व एकत्रित किया जाता था किंतु बाद में प्रत्येक किसान का मूल्यांकन अलग से होता था। इस प्रकार ज़मींदार के बदले किसान भूमि के मालिक हो गए। हालाँकि इस व्यवस्था ने राजस्व संग्रह में वृद्धि की किन्तु मूल्यांकन त्रुटिपूर्ण था तथा किसान करों के भारी बोझ से दब गए। भूमि के दलाल हालाँकि फलते– फूलते रहे।

भारत के उत्तरी तथा उत्तर–पश्चिम में 1822 के उपरांत महलवाड़ी व्यवस्था लागू की गई, जिसमें ग्राम समाज तथा अधिकतर मामलों में तालुकदारों से समझौते किए गए। ऐसी हर वित्तीय इकाई 'महल' कहलाती थी। इस व्यवस्था के तहत् कुछ महत्ता सामूहिक सम्पत्ति अधिकार को भी प्राप्त हुई।

अंग्रेजों की राजस्व नीतियों के परिणामस्वरूप कृषि विकास की गति अवरुद्ध हो गई तथा किसान अपनी ही भूमि पर किराएदार बन गए। इसकी वज़ह से भूमि के दलालों की संख्या में वृद्धि हुई तथा ग्रामीण इलाकों में सूदखोरों की संख्या को भी पनपने का मौका मिला। भू–मालिक तथा ज़मींदार ब्रिटिश उपनिवेशवाद के मुख्य वर्ग तथा सहयोगी बन गए।

दीवानी अधिकार की प्राप्ति का अर्थ था कि अब बंगाल के समृद्ध क्षेत्र में कम्पनी स्थानीय शासकों, ज़मींदारों तथा व्यापारियों की दौलत को नियन्त्रित कर सकती थी तथा उन्हें ब्रिटेन में बिकने के लिए भेजे जा रहे माल को खरीदने के लिए उनका उपयोग कर सकती

आपकी टिप्पणियाँ

थी। बड़ी मात्रा में पैसे ने, जिसमें कम्पनी अधिकारियों की अवैध सम्पत्ति भी शामिल थी, बंगाल से ब्रिटेन की राह पकड़ ली। घर लौटने से पहले कम्पनी अधिकारियों ने बहुत माल कमाया तथा अपनी विलासी जीवनशैली की वजह से उन्हें ब्रिटेन में 'नाबोब' कहा जाता था। इस पैसे का बड़ा भाग कंपनी को ब्रिटेन में औद्योगिक क्रान्ति में जान डालने के काम आया। भूमि राजस्व से अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करने के लालच ने भारत के क्षेत्रीय विस्तार में अधिक उग्र तथा आक्रामक नीतियाँ अपनाने को बाध्य किया।

पाठगत प्रश्न 17.1

1. भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद के तीन चरण कौन–कौन से थे?

2. पलासी के युद्ध के लिए ज़िम्मेदार मुख्य घटक कौन–कौन से थे?

3. किसके साथ कम्पनी ने बंगाल में स्थाई राजस्व समझौता किया?

4. किस क्षेत्र में सर्वप्रथम रैय्यतवाड़ी प्रथा का आरंभ हुआ?

17.2 ब्रिटिश उपनिवेशवाद का द्वितीय-चरण (मुक्त व्यापार)

द्वितीय चरण 1813 में चार्टर एक्ट के अमल के साथ प्रारंभ होता दिखलाई पड़ता है जब कम्पनी ने भारत में अपने व्यापार पर एकाधिकार खोया तथा 1858 में वह समाप्त हो गया, जब भारत में ब्रिटिश क्षेत्रों पर ब्रिटिश राजसत्ता ने प्रत्यक्ष नियंत्रण तथा प्रशासन स्थापित कर लिया।

ज्यों–ज्यों कम्पनी का मुनाफा बढ़ता गया, ब्रिटिश सरकार से मिलने वाला समर्थन कम होता गया। पहले संसद के कई सदस्यों को 'ईस्ट इण्डियन' का लाभ मिलता था जो सरकार में अपनी स्थिति को सुदृढ़ बनाए रखने के लिए कम्पनी के संसाधनों का प्रयोग करते थे। किन्तु जैसे ही ब्रिटेन में औद्योगिकीरण की विभिन्न स्तरों पर प्रगति हुई संसद के संविधान में धीरे–धीरे परिवर्तन होने लगा। एडम स्मिथ द्वारा लिखी गई पुस्तक "एन इन्क्वारी इन टू द नेचर एंड कॉलेज ऑफ द वेल्थ ऑफ नेशन्स" तथा "कौसाज ऑफ द पैल्थ ऑफ नेशन" आर्थिक विचारों की एक शैली पर प्रकाश डालती है जो कम्पनियों द्वारा उठाई जा रही मुक्त व्यापार की नीति के फायदे को बतलाती है। कम्पनी की आय पर अधिकार जमाने के लिए संसद ने कम्पनी के अधिकारियों को व्यक्तिगत रूप से निशाना बनाना प्रारम्भ कर दिया तथा उन पर दुराचार के आरोप लगाए गए। संसद में मुक्त व्यापार की माँग करने वाले, 19वीं शताब्दी में भारत में सीधे आने की बात करने वालों में तब्दील हो गए जिससे 1813 में चार्टर एक्ट पारित किया गया। इस प्रकार भारत में कम्पनी के एकाधिकार

की समाप्ति हुई तथा कम्पनी के अधीन भारत के क्षेत्रों का पूर्ण नियंत्रण ब्रिटेन की महारानी के हाथों में चला गया।

'मुक्त व्यापार' ने एक दोहरी नीति के द्वारा भारतीय उपनिवेश की प्रकृति को बदल कर रख दिया। पहले तो इसने भारतीय बाज़ारों को सस्ते, अधिक मात्रा में उत्पादित तथा मशीन आधारित ब्रिटिश सामानों के लिए खोल दिये, जिनके ऊपर नाम मात्र के या काई भी व्यापार कर नहीं थे। महँगे तथा हाथ से निर्मित भारतीय वस्त्रों, जो कि ब्रिटेन में बहुत लोकप्रिय थे, उनपर प्रतिबन्धित सीमा शुल्क दर की वजह से रोक लग गई। तथा दूसरे

ब्रिटिशों –भारतीय क्षेत्र खाद्य पदार्थों तथा कच्चे माल के स्रोत के रूप में ब्रिटेन के लिए विकसित हुआ, जिसमें निर्माण क्षेत्र में तीव्र प्रगति ने जान फूँक डाली, जो पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के उदय के लिए अत्यावश्यक थी। इन परिवर्तनों ने भारत के अनुकूल व्यापारिक हितों को एक दम पलट कर रख दिया। इस चरण ने भारत में कृषि के व्यावसायीकरण की जटिल प्रकिया तथा औद्योगीकीकरण की प्रक्रिया द्वारा विशुद्ध औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था की नींव डाली, जो नीचे दर्शाए गए हैं।

कृषि का व्यावसायीकरण

ऐसा अक्सर माना जाता है कि औपनिवेशवादी प्रशासन ने कृषि के व्यावसायीकरण को जन्म दिया जिसने भारतीय उपनिवेश में कई स्थानों पर किसानों की स्थिति में सुधार किया। सन् 1860 के उपरान्त कृषि उत्पादन की प्रवृत्ति समुद्रपार के बाज़ार में प्राथमिक भारतीय वस्तुओं की माँग द्वारा संचालित होने लगी। 19वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में निर्यात होने वाली वस्तुओं में मुख्य थे–अफ़ीम, कपास तथा रेशम। धीरे–धीरे कच्चे जूट, अनाज, तेल, बीज तथा चाय ने अफ़ीम का स्थान ले लिया। कच्चा कपास सर्वाधिक माँग वाला उत्पाद बना। पैसा उगाहने वाली इन फसलों के विस्तार ने 1850 ई. में रेल नेटवर्क को जन्म दिया, जिससे व्यापार तन्त्र सें सुधार आ सके।

किन्तु यह व्यावसायीकरण एक कृत्रिम प्रणाली के रूप में सामने आया जिसकी वजह से कृषि क्षेत्र में विकास की गति सीमित हो गई। इसने कृषि क्षेत्र में विषमताओं को तो पैदा किया किंतु ब्रिटेन की तरह पूँजीवादी भू–मालिक का ढाँचा खड़ा नहीं कर पाया। बड़े स्तर पर एक साथ हुए औद्योगिक विकास के अभाव का अर्थ था–संचित कृषि आय के निवेश के लिए कोई उचित तरीका नहीं था, जिसके वह औद्योगिक पूँजी में तब्दील हो सके। उत्पादक क्षमता में विस्तार तथा कृषि का संगठन भी एक जोखिमपूर्ण कार्य ही थे क्योंकि इस क्षेत्र में दूरस्थ विदेशी बाज़ार था जहाँ दाम ऊपर–नीचे होते रहते थे। जबकि उपनिवेशवादी राज्यों ने कृषि विशेषज्ञों को कोई सुरक्षा भी प्रदान नहीं कर रखी थी। इस प्रकार व्यावसायीकरण ने उप–ज़ागीरदारी के स्तर को पूरे देश में बढ़ावा दिया तथा यह धन व्यापार तथा सूद खोरी के माध्यम से संयोजित हुआ।

निर्यात व्यापार के माध्यम से उगाहा हुआ धन ब्रिटेन के व्यावसायी घरानों में पहुँचा जिसने नौपरिवहन तथा बीमा उद्योग को नियन्त्रित किया। साथ ही कमीशन एजेंट, व्यापारियों तथा बैंकरों पर भी लगाम लगाई गई। उपनिवेश में जो लोग भाग्यशाली रहे उनमें मुख्य थे बड़े कृषक, कुछ बड़े भारतीय व्यापारी तथा पैसा उधार देने वाले। व्यावसायीकरण ने ग्रामीण क्षेत्रों में भूमि स्वामी तथा पैसा उधार देने वालों के सामंती ढांचे को सुदृढ किया।

आपकी टिप्पणियाँ

व्यावसायीकरण की इस तथाकथित व्यवस्था, अक्सर शोषण वाली तथा गुलाम की तरह काम करनेवाले श्रमिकों द्वारा काम करवाया जाता था जिससे पूँजीवादी कृषि की अपेक्षा थी। असम के बागानों में चाय का उत्पादन होता था, जिनके मालिक गोरे हुआ करते थे तथा वे इकरारनामे के तहत बंधे श्रमिकों का प्रयोग करते थे जो दास के समान होते थे। गोरे किसानों के पास नील की खेती के लिए किसान नहीं थे क्योंकि इससे लाभ कम होता था तथा यह कृषि चक्र को भी प्रभावित करता था। अतः वे किसानों को नील की खेती के लिए बाध्य करते थे। इसमें अमानवीय जोर जबरदस्ती होती थी जिसने 1859-60 में नील विद्रोह को जन्म दिया। व्यावसायीकरण ने 1860 में भारत के पश्चिम क्षेत्र में कपास उत्पादक क्षेत्र में तथा पूर्वी भारत में जूट उत्पादन में सीमित सफलता पाई किन्तु यह बढ़ी हुई माँग का नतीजा था, न कि उत्पादन या संगठन से पूँजीवादी सुधार का।

किसानों को पैसा उगाहने वाले फ़सलों की भी खेती करनी पड़ी क्योंकि उन्हें कर, राजस्व तथा कर्ज एवं किराये का भुगतान नकद में करना पड़ता था। एक ओर खाद्य पदार्थों की खेती से दूरी तथा दूसरी और ज्वार, बाजरा तथा दलहन ने अकालग्रस्त समय में तबाही का कार्य किया। भारतीय सूत की विश्व में कम होती माँग ने 1870 में दक्किन कपास क्षेत्र में कर्ज, अकाल तथा कृषि संबंधी दंगों को जन्म दिया। सन् 1930 में जूट उद्योग ढह गया, तत्पश्चात् बंगाल में 1943 में भीषण अकाल पड़ा। हालाँकि इन अकालों के लिए उत्तरदायी घटकों को लेकर इतिहासकारों में मतभेद है किन्तु इस बात से सभी सहमत हैं कि बढ़ती जनसंख्या के मुकाबले खाद्य –उत्पादन कम रहा तथा लाखों लोग भूखमरी तथा महामारियों से मारे गए।

कृषि उत्पादन को सुधारने के लिए उठाए गए सीमित कदमों में मुख्य था–उत्तरी, उत्तर–पूर्वी तथा दक्षिण–पश्चिमी भागों में जुताई के लिए नहरों का निर्माण करना। "स्थाई रूप से व्यवस्थित" पूर्वी भारत को सरकार के इस अभियान से दूर रखा गया क्योंकि वहाँ पर राजस्व वृद्धि की कोई संभावना नहीं थी। इसी प्रकार राजस्व को ऊँचे स्तर तक ले जाना तथा विषम स्थितियों में सीमित सहायता ऐसे घटक थे जो इस धन–निवेश का कारण बने। इसने सीमित क्षेत्रों, विशेषकर पंजाब के नहर उपनिवेशों में समृद्धता की नींव डाली किन्तु यह उन्हीं अमीर किसानों तक सीमित रह गया जो उच्च जल दरों का भुगतान कर सकते हों। इसने नकदी फ़सलों, जैसे चीनी, कपास तथा गेहूँ के अधिक उत्पादन को प्रोत्साहित किया जबकि मोटे अनाज तथा दाल के उत्पादन को कम किया। कुछ मामलों में, जैसे संयुक्त क्षेत्रों में, यह तरीका स्थानीय स्थितियों के अनुकूल नहीं रहा तथा यह दलदल तथा अत्यधिक खारेपन का कारण बना।

सन् 1853 में लॉर्ड डलहौजी ने भारत में रेल मार्ग निर्माण का निश्चय किया। अक्सर रेलवे को ही ब्रिटिश शासन में हुए भारत के विकास के मुख्य चिह्न के रूप में देखा जाता है। किन्तु भारत में रेलवे के निर्माण ने भारत के आर्थिक विकास के औपनिवेशवादी ढाँचे को मजबूत किया। रेलवे के तन्त्र ने आन्तरिक बाज़ारों को चिह्नित करने में मदद की तथा उपनिवेश में कच्चे माल का स्रोत ढूँढने में सहायता की। साथ ही आंतरिक बाज़ारों को एक दूसरे से जोड़ने के स्थान पर तटीय शहरों से उन्हें जोड़ा। रेलवे तन्त्र ने इस प्रकार विदेशी व्यापार के मुनाफे में वृद्धि की। सीमा क्षेत्र में बनी रेलवे लाइन सैन्य अभियानों को प्रारम्भ कर सकती थीं तथा कुछ 'आपदा लाइनें" एकान्त क्षेत्र में बनवाई गईं। इस प्रकार यह पूरी परियोजना ब्रिटिश पूँजी से तैयार हुई तथा ब्रिटेन में निवेशकों को पाँच प्रतिशत

ब्याज की गारन्टी दी गई, जिसका भारतीय राजस्व से भुगतान किया गया। उच्चस्तरीय कुशलता तथा रेलवे उपकरण जैसे मशीनरी, रेलवे लाइन तथा कुछ हद तक कोयला भी ब्रिटेन से आयात किया गया। इसने सुनिश्चित किया कि रेलवे निर्माण के विविध प्रभाव भारत से दूर ही रहें।

अन्य घटकों के साथ–साथ भारत के आंतरिक क्षेत्रों में दखल ने भारतीय हस्तशिल्प उद्योग को नष्ट कर दिया जिसे स्थानीय शासन तथा समुद्र पार से संरक्षण समर्थन प्राप्त था। ब्रिटेन के बढ़ते प्रभावों की वजह से देशी न्यायालय समाप्त हो गए। ब्रिटिशों ने असमान सीमा शुल्क भी लगाए, जहाँ एक ओर भारत के बने उत्पादों को ब्रिटिश बाज़ार में प्रवेश करने के लिए भारी चुंगी चुकानी होती थी वहीं यूरोप में औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप निर्मित सस्ते उत्पादों से भारत का बाज़ार भर गया। इसका मुकाबला करने में असमर्थ भारतीय वस्तुओं ने समुद्र पार तथा घरेलू दोनों ही बाज़ार खो दिए। इस घातक प्रणाली ने अनौद्योगीकरण को जन्म दिया जिससे भूमि पर दबाव बढ़ गया।

पाठगत प्रश्न 17.2

1. 18वी शताब्दी में किस अर्थशास्त्री ने मुक्त व्यापार के सिद्धान्त की स्थापना की?

2. कृषि के व्यावसायीकरण ने किस प्रकार अकाल को जन्म दिया?

3. अंग्रेजों द्वारा बन गई सिंचाई नहरों से कौन सा क्षेत्र सर्वाधिक लाभान्वित हुआ?

4. ब्रिटेन की औद्योगिक क्रान्ति ने किस प्रकार ब्रिटिश भारत में 'अनौद्योगीकरण' को जन्म दिया?

17.3 ब्रिटिश उपनिवेशवाद का तीसरा चरण

ब्रिटिश भारत में तीसरे चरण की शुरुआत 1860 ई. से प्रारम्भ होती है, भारत जब निरंतर विस्तारित ब्रिटिश साम्राज्य का हिस्सा बन गया तथा ब्रिटिश राज सिंहासन के नियन्त्रण तथा संप्रभुता के अधीन हो गया। यह काल एक प्रकार का आर्थिक–साम्राज्यवाद का था जब ब्रिटिश पूँजी उपनिवेश में निवेश हुई थी। यह पूँजी ब्रिटिश बैंकों, आयात–निर्यात संस्थाओं तथा प्रबन्धन सेवाओं के बड़े तन्त्र द्वारा जुटाई गई थी।

हालाँकि उपनिवेशवाद की प्रक्रिया को चरणों में विभाजित किया गया है तब भी यह ध्यान में रखना चाहिए कि काल निर्धारण की प्रक्रिया मनमाने ढंग से की गई है। तीसरा चरण मात्र उन प्रवृत्तियों का सम्मिलित रूप था जो पहले के दो चरणों में स्पष्टतः दिखाई दे रही थी। इन चरण का पढ़ना अधिक लाभकारी हो सकता है क्योंकि इस चरण में शोषण के पुराने तथा क्रूर तरीकों के साथ नए एवं कठोर तरीके भी अपनाए थे। हालाँकि तीसरे चरण की महत्त्वपूर्ण गतिविधि थी–विकसित तथा औद्योगिक देशों तथा एशिया, अफ्रीका

तथा लैटिन अमेरिका के उपनिवेशों के बीच प्रबल प्रतिद्वन्द्विता। 19वीं शताब्दी में फ्रांस, जर्मनी, बेल्जियम तथा अमेरिका एवं यहाँ तक कि जापान ने भी औद्योगिकीकरण का स्वाद चखा। विश्व बाज़ार में प्रतिद्वन्द्विता के कारण ब्रिटेन की पकड़ धीरे–धीरे कम होने लगी। नए बाज़ारों की तलाश तथा कच्चे माल की खोज में इन देशों ने उपनिवेशों की तलाश प्रारम्भ कर दी तथा वर्तमान औपनिवेशिक बस्तियों पर अपनी पकड़ मजबूत कर दी। आर्थिक विकास ने पूँजी संग्रह की व्यवस्था का भी श्री गणेश किया जो कि कम संख्या में बैंकों तथा व्यवसायों में केन्द्रित थी। इस पूँजी को औद्योगिक उत्पादन की गति को और तीव्र बनाने के लिए एवं कच्चे माल के तीव्र प्रवाह को बनाए रखने के लिए उपनिवेश मेंनिवेशित किया गया।

अन्य विकासशील पूँजीवादी देशों में ऊँचे शुल्क के प्रतिबंध ने ब्रिटेन में निर्मित उत्पादों के बाज़ार के संक्षिप्तीकरण की प्रक्रिया को जन्म दिया। तथा ब्रिटेन में कृषि उत्पादों के भारी आयात की आवश्यकता ने इसकी स्थिति को अन्य देशों के साथ व्यापार में दुर्बल बना दिया। ब्रिटेन के घाटे की समस्या को सुलझाने में भारत की भूमिका महत्त्वपूर्ण साबित हुई। भारत के ऊपर ब्रिटेन के नियन्त्रण ने यह सुनिश्चित किया कि उसके कपड़ों के लिए एक बंदी बाज़ार मौजूद है। हालाँकि भारत के कच्चे माल के अतिरिक्त निर्यात (ब्रिटेन के अतिरिक्त अन्य देशों के साथ) ने उसके घाटे को कहीं और से पाटने में मदद की।

जहाँ एक ओर देशी हथकरघा उद्योग दम तोड़ रहा था वहीं उपनिवेश में नए उद्योग प्रारम्भ करने के भी कुछ प्रयास हुए। हालाँकि उपनिवेशी सरकार ने हमेशा "मुक्त व्यापार" की बात की किन्तु राज्य की भेदभाव पूर्ण नीति के परिप्रेक्ष्य में स्वदेशी व्यावसायियों को कई बाधाओं का सामना करना पड़ता था। ब्रिटिश पूँजी आरम्भ में रेलवे, जूट उद्योग, चाय बागान तथा खनन में निवेश की गई थी। भारतीय पूँजी बाज़ार यूरोपीय बैंकिग संस्थाओं द्वारा संचलित होता था। जहाँ एक ओर इन बैंकों के तन्त्र से ब्रिटिशों को पूँजी आसानी से प्राप्त होती थी वहीं भारतीय व्यापारी अभी भी परिवार या जातिगत संगठनों पर ही आश्रित थे। ब्रिटिश बैंकिग कम्पनी तथा ब्रिटिश ट्रेडिंग लाभ बहुत ही सुनियोजित रूप से चैम्बर्स ऑफ कॉमर्स तथा प्रबन्धक संस्थाओं द्वारा संचालित होता था। प्रथम विश्व युद्ध से पूर्व ब्रिटिश प्रबन्धन संस्थाओं द्वारा औद्योगिक पूँजी के 75 प्रतिशत हिस्से को नियन्त्रित किया जाता था तथा इस सीमित औद्योगिकीकरण से प्राप्त अधिकतम लाभ ब्रिटेन वापस भेज दिया जाता था।

किन्तु भारी कठिनाइयों के बावजूद भारतीय व्यापारियों ने आगे बढ़ने के अपने अवसर तलाशे। जब भी ब्रिटेन आर्थिक संकट के दौर से गुजरा, प्रथम विश्व युद्ध के दौरान, कलकत्ता के मारवाड़ी व्यवसायी, जैसे जी-डी- बिड़ला तथा स्वरूप चन्द हकीम चन्द ने जूट उद्योग में निवेश किया। शीघ्र ही उन्होंने अपना प्रभाव क्षेत्र अन्य क्षेत्रों, जैसे–कोयला की खदानों, चीनी मिलों तथा कागज़ उद्योग तक विस्तृत किया तथा उन्होंने कुछ यूरोपीय कम्पनियां भी खरीदीं। भारतीय पूँजी की जबरदस्त सफलता पश्चिम में कपड़ा उद्योग में देखी जा सकती है, जिसने अपनी सफलता को संगठित करने के लिए विश्व युद्ध (1914-18) के दौरान बढ़ी माँगों का लाभ उठाया तथा वह लगभग लंकाशायर से बराबरी की स्थिति में आ गया। कुछ निश्चित व्यवसायी समाज, जैसे गुजराती, बनिया, पारसी, बोहरा तथा भाटिया इस क्षेत्र में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हो गए थे। टाटा लौह एवं इस्पात कम्पनी को सरकारी संरक्षण मिला जिससे भारत की इस अनुभवहीन लौह एवं इस्पात कम्पनी को नेतृत्व करने का मौका प्राप्त हुआ था।

प्रथम विश्व युद्ध के उपरान्त विदेशी व्यापार के सूत्र पुनः जुड़ने प्रारम्भ हुए किन्तु पुनः निराशावादी दौर (1929-33) में घरेलू बाज़ार तुलनात्मक रूप से देशी उद्योगों द्वारा दोहन के लिए मुक्त हो गया क्योंकि विदेशी व्यापार घटा था। उपनिवेशवादी सरकार ने चीनी तथा कपास उद्योग को कुछ सुरक्षा प्रदान की थी, कृषि क्षेत्र में गिरते मूल्यों को देखते हुए यह कदम उठाया गया था। कम कीमतों ने पूँजी का रुख औद्योगिक क्षेत्र की ओर मोड़ दिया था। भारतीय भी बीमा तथा बैंकिंग क्षेत्र में कूद पड़े थे। पुनः द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान (1939-45) जैसे ही विदेशी आर्थिक प्रभाव कम होना प्रारम्भ हुआ, भारतीय उद्योगपतियों ने भारी लाभ कमाया। अपनी सीमित सफलताओं से उत्साहित होकर भारतीय पूंजीवादी वर्ग ने अपने संबंध भारतीय राष्ट्रवादियों से जोड़े। शीघ्र ही उन्होंने राज्य के अधीन भारी उद्योगों की स्थापना की माँग प्रारम्भ कर दी तथा विदेशी पूँजी के प्रवेश को लेकर उन्होंने स्वयं को संगठित करना प्रारम्भ कर दिया था।

किन्तु व्यापक स्तर पर इन सफलताओं को सही परिप्रेक्ष्य में देखें तो ये विकास घरेलू बाज़ार तक ही सीमित थे तथा आगे स्वदेशी पूँजी को उपनिवेशवादी अर्थव्यवस्था की ढाँचागत दुर्बलताओं के खिलाफ एक लम्बी लड़ाई लड़नी थी। भारतीयों की गरीबी को देखते हुए प्रगति की संभावनाएँ निराशा ही उत्पन्न करती रहीं।

आरम्भिक भारतीय राष्ट्रवादी, जैसे–दादा भाई नौरोजी, एम. जी. रानाडे तथा आर. सी. दत्त ने ब्रिटेन से भारतीय पूँजीवादी औद्योगिकीकरण की अपेक्षा रखी थी। किन्तु उपनिवेशवादी आर्थिक नीतियों से वे असंतुष्ट नज़र आए। परिणामतः उन्होंने 19वीं शताब्दी के अन्त में उपनिवेशवाद की भयंकर आर्थिक आलोचना की। दादा भाई नौरोजी ने "समृद्धि का पलायन" अवधारणा को आगे बढ़ाया। उनके अनुसार भारत में गरीबी, भारतीय संपदा का धीरे–धीरे ब्रिटेन में पलायन का परिणाम थी। यह पलायन उस ब्याज की वजह से हुआ जो भारत ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी को विदेशी कर्ज चुकाने, सैन्य खर्चों, रेलवे तथा अन्य ढाँचागत सेवाओं में विदेशी निवेश पर निश्चित ब्याज, इंग्लैंड से हर लेखन सामग्री का आयात तथा ब्रिटिश सरकार द्वारा भारत पर शासन करने के लिए सैन्य तथा नागरिक अधिकारियों की नियुक्ति, राज सचिव के वेतन, अधिकारियों की पेंशन वगैरह के लिए भारतीय धन का प्रयोग किया। हालाँकि यह पलायन भारत के कुल निर्यात का छोटा सा ही अंश था, यदि इसका निवेश देश में हो गया होता तो पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के निर्माण में यह मदद कर सकता था।

उपनिवेशवादी आर्थिक नीतियों को लेकर एक मुख्य प्रश्न उठता था कि क्या भारत में कुछ विकास हुआ? इस प्रश्न का उत्तर सरल नहीं है। हम 19वीं शताब्दी के मुगल साम्राज्य से देखना प्रारंभ करते हैं जब तक कि ब्रिटिशों ने खुद को मुख्य शक्ति के रूप में स्थापित नहीं किया था। यह मत कि 18वीं शताब्दी का मुगल काल पतन की ओर जा रहा था तथा गंभीर आर्थिक समस्याओं के तले आ गया था, इस पर इतिहासकार एक मत नहीं हैं। हमें मुग़ल साम्राज्य के पतन को लेकर एक बड़ा नजरिया अपनाने की आवश्यकता है। क्योंकि बाद में कुछ इतिहासकारों ने इस सिद्धांत को पलट दिया तथा उन्होंने नए विद्रोह समूहों के उदय को मुग़ल साम्राज्य के पतन का कारण बताया। उन्होंने तर्क दिया कि संपूर्ण मुग़ल काल संपन्नता तथा आर्थिक विकास का युग था, न कि संकट का। राजनीतिक ढाँचे में स्थानीय प्रमुख के हाथों में व्यापक शक्ति तथा स्वायत्तता थी ताकि अतिरिक्त सम्पत्ति का संग्रह कर सकें। मुरादाबाद, बरेली, अवध, बनारस तथा

आपकी टिप्पणियाँ

बंगाल इन्हीं अतिरिक्त क्षेत्रों में मुख्य थे। सिंचाई को बढ़ावा देने के लिए बड़ी मात्रा में वन क्षेत्र खाली कर दिया गया। कृषि क्षेत्र में लगातार वृद्धि तथा जटिल संबंधों की स्थापना ने जमींदार तथा भूमि मालिकों को अतिरिक्त संग्रह के योग्य बनाया जिन्होंने नई क्षेत्रीय शक्तियों के रूप में मुग़ल वर्चस्व को चुनौती दी।

पाठगत प्रश्न 17.3

1. किस प्रथम वैश्विक घटना ने भारत के उद्योगों को पनपने का अवसर दिया?

2. सम्पत्ति के पलायन का सिद्धांत किसने बतलाया?

3. क्या बाद के इतिहासकार 18वीं शताब्दी को आर्थिक रूप से पिछड़ा बतलाते हैं?

इस प्रकार भारत की जो छवि हमें मिलती है वह ऐसे आर्थिक माहौल की थी जिसमें प्रगति की अपार संभावनाएं थीं। फिर हम उस गरीबी की व्याख्या किस प्रकार कर पाएंगे जिसका परिचय हमें 200 वर्षों के ब्रिटिश उपनिवेशवाद के अंत में मिलता है? कुछ लेखकों का मत है कि ब्रिटिशों ने भारत को आंशिक रूप से आधुनिक बनाने का प्रयत्न किया किन्तु मजबूत परम्परागत ढाँचों की वजह से असफल हो गए। किन्तु हमने यह महसूस किया कि ये आधे–अधूरे विकास मात्र उनकी मातृभूमि को फायदा पहुँचाने के लिए किए गए थे। निम्न वर्ग में पिछड़ेपन को भी औद्योगिक क्रान्ति के दूसरे पहलू के रूप में देख सकते हैं जबकि इस क्रान्ति का मुख्य बिन्दु पश्चिम था। इसी प्रक्रिया ने ब्रिटेन में औद्योगिक क्रान्ति को जन्म दिया, जिसने भारतीय समाज में पिछड़ापन कायम रखा क्योंकि ब्रिटिश अर्थव्यवस्था, भारतीय अर्थव्यवस्था पर परजीवी के रूप में आश्रित थी। 'मुक्त व्यापार' रूपी विश्व की अर्थव्यवस्था की अभिन्न प्रणाली के रूप में।

सन् 1947 में भारत पूर्व औद्योगीकरण की स्थिति में नहीं था। अतः स्वतन्त्रता के बाद की आर्थिक प्रगति के ढंग को हम पश्चिम की औद्योगीकरण की प्रणाली से तुलना नहीं कर सकते। 1947 में भारत पहले ही पश्चिम के पूँजीवादी विकास का अंग बन चुका था, किन्तु उपनिवेश की हैसियत से। अतः 1947 में स्वतन्त्र भारत ने उपनिवेशवादी तरीके से आधुनिकीकरण में कदम रखा जो कि परम्परागत, ढाँचागत रूप से पिछड़ा तथा अविकसित था।

आपने क्या सीखा

भारत में अपना शासन स्थापित करने के लिए चरणबद्ध तरीके से आर्थिक दोहन ही ब्रिटिशों का मुख्य उद्देश्य था। शोषण की इस प्रवृत्ति ने शासन का रूप ही बदल दिया जिसने ब्रिटेन में भी परिवर्तन को जन्म दिया। इससे भी उपनिवेश में आर्थिक, सामाजिक

तथा राजनीतिक परिणाम हुए। उपनिवेशी राज्य के अंतर्गत होने वाले विकास को आधुनिकीकरण की संज्ञा दी गई किन्तु उपनिवेश पर इसके भिन्न प्रभाव पड़े जो प्रगति के बदले पिछड़ेपन का कारण बना। और अन्ततः संसाधनों के दोहन ने देश को यूरोप में औद्योगीकरण के योग्य बनाया।

पाठांत प्रश्न

1. ब्रिटिश द्वारा लागू की गई राजस्व नीतियाँ क्या थी तथा उपनिवेश के ग्रामीण क्षेत्रों में उसके क्या प्रभाव पड़े?
2. उपनिवेश में कृषि का व्यावसायीकरण एक 'जबरदस्ती/जबरन' प्रणाली किस प्रकार थी?
3. 'आर्थिक साम्राज्य' की व्याख्या कीजिए?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

17.1

1. पहला चरण व्यापारवाद का था (1757-1813), प्रत्यक्ष लूट पाट, द्वितीय चरण (1813-1858) मुक्त व्यापार तथा तीसरा चरण 1850 से आगे आर्थिक साम्राज्यवाद का था।
2. कम्पनी के अधिकारियों द्वारा अपने व्यक्तिगत व्यापार के लिए दस्तक के दुरुपयोग ने बंगाल के नवाब को क्रोधित कर दिया?
3. जमींदार
4. मद्रास तथा बम्बई क्षेत्र

17.2

1. एडम स्मिथ
2. नगदी फसलों के उत्पादन को खाद्य फसलों की कीमत पर प्रोत्साहन दिया गया।
3. पंजाब
4. ब्रिटेन के मशीन से बने उत्पादों से भारतीय बाज़ार पट गया जबकि भारतीय हस्तशिल्प उनसे मुकाबला नहीं कर पाया।

17.3

1. प्रथम विश्व युद्ध
2. दादा भाई नौरोजी

आपकी टिप्पणियाँ

3. नहीं, बाद मे इतिहासकारों से 18वीं शताब्दी को आर्थिक विकास तथा सम्पन्नता का युग बताया?

पाठांत प्रश्नों के संकेत

1. देखें प्रभाग 17.1 'भूमि राजस्व नीतियाँ'
2. देखें प्रभाग 17.2 'कृषि का व्यावसायीकरण'
3. देखें प्रभाग 17.3 'ब्रिटिश उपनिवेशवाद का तृतीय चरण'

शब्दावली

1.	**व्यापारवाद**	-	16वीं तथा 18वीं शताब्दी में यूरोप में प्रचलित एक आर्थिक सिद्धांत जिसमें राज्य उपनिवेश के माध्यम से सोने चांदी का प्रवाह सुनिश्चित करता था तथा व्यापार एवं संसाधनों पर नियंत्रण रखता था।
2.	**बुलियन**	-	बहुमूल्य धातु के रूप में सम्पत्ति जैसे सोना और चाँदी
3.	**दीवानी**	-	राजस्व एकत्र करने का अधिकार
4.	**तालुकदार**	-	ब्रिटिश शासन से पूर्व, ग्रामीण क्षेत्र में राजस्व अधिकारी
5.	**एकाधिकार**	-	व्यापार विशेष के लिए विशेष अधिकार
6.	**सीमा शुल्क**	-	निर्यात के लिए दिया जाने वाला शुल्क
7.	**व्यवसायीकरण**	-	व्यापारिक उद्देश्य के लिए किसी नियम को बदलना
8.	**मुक्त व्यापार-**		अंतराष्ट्रीय व्यापार जो सरकार के किसी भी प्रतिबन्ध से मुक्त हो
9.	**श्रमिकों का बंधन युक्त प्रकार**	-	न सिर्फ पैसों के रूप में बल्कि अन्य शक्तियों के **युक्त प्रकार** परिणाम स्वरूप बाध्यकारी श्रम जैसे–मानसिक, शारीरिक, रूढ़िगत,राजनीतिक इत्यादि।
10.	**विविध प्रभाव**	-	अर्थशास्त्र में एक सिद्धात जहाँ अन्य आर्थिक गतिविधियों को प्रभावित करने के लिए अतिरिक्त खर्च करना। जैसे रेलवे के निर्माण में डब्बों तथा ट्रैक का निर्माण होने की स्थिति में लौह, इस्पात तथा कोयले की माँग में वृद्धि होना। इसकी वज़ह से बड़ी संख्या में लोगों को रोजगार भी प्राप्त हुआ।
11.	**घाटा**	-	जब व्यापार में आय से अधिक खर्च हो।